International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 214-215

प्रेमचंद–युगीन कहानीकारों का सांस्कृतिक बोध

प्रियंका कुमारी
शोध छात्रा, बाबासाहेब भीमराव अम्बेदकर बिहार विश्वविद्यालय, बिहार, भारत।

प्रस्तावना

कथा–साहित्य अपने उद्‌भव के साथ वाचिक परंपरा से होता हुआ लेखन के विविध सोपानों के पश्चात् प्रेमचंद–युग में आकर अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है। वस्तुतः प्रेमचंद ही पहले ऐसे हिन्दी साहित्य के कथाकार हैं, जिनके यहाँ कहानी शिल्प एवं भाव दोनों ही दृष्टियों से अपने उत्स को प्राप्त कर लेती है।

प्रेमचंद–युग प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्धों के मध्य आता है। यह भारतीय इतिहास में घोर उथल–पुथल का काल है। इसमें जनता के जीवन में जड़ से परिवर्तनशीलता दिखाई देती है। आजादी की माँग जोर पकड़ी हुई थी तथा देश के प्रति प्रेम–भावना जागृत होने पर भारत की जनता में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक चेतना भी जागी। इसी समय हिन्दू और मुसलमानों की परंपरागत संस्कृति के साथ नई ईसाई संस्कृति का भी तीव्र गति से विकास हो रहा था। यह नई संस्कृति देश की परंपरागत सांस्कृतिक धाराओं को प्रभावित कर रही थी। सामान्यतः जब दो सभ्यताएँ टकराती हैं तो दो संस्कृतियों का संगम होता है एवं बौद्धिकता का आदान–प्रदान होता है। पुराने मूल्य टूटते हैं एवं नये मूल्यों की खोज अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करता है। ये मूल्य, आर्थिक प्रभाव, सांस्कृतिक घात–प्रतिघात प्रेमचंद–युग में द्रष्टव्य है।

प्रेमचंद–युग सांस्कृतिक संघर्ष का युग था, जिसमें विभिन्न संस्कृतियों का विरोध एवं समन्वय हुआ। स्थूल रूप से इस सांस्कृतिक संघर्ष का प्रभाव यह हुआ कि संस्कृति विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के अनुसार निर्धारित होने लगी। यह वर्ग एक–दूसरे के विरोधी थे। इसका मूलाधार शिक्षा एवं अशिक्षा था। बड़े–बड़े नगरों में रहनेवाले शिक्षित वर्गों की संस्कृति छोटे–छोटे गाँवों में रहनेवाली अशिक्षित व्यक्तियों की संस्कृति से भिन्न हो गयी। इस प्रकार नागरिक एवं ग्रामीण संस्कृतियों का स्वतंत्र रूप में विकास हुआ। इसमें नागरिक संस्कृति नवीनतावादी समन्वित संस्कृति थी एवं ग्रामीण संस्कृति पुरातनपंथी और रूढ़िवादी संस्कृति थी।

इस समय तक भारत पर ब्रिटिश सत्ता का वर्चस्व भी कायम ही था। अतः अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार–प्रसार आर्थिक संकट, विदेशी भाषा और विदेशी वस्तुओं का प्रभाव तथा यूरोपीय नवजागरण की शुरूआत से समाज की कुरीतियों, अनीतियों एवं पाखण्डों का विरोध होने लगा था। आधुनिक संस्कृति में जो जीवन शैली विकसित हो रही थी वह पुराने रूपों को बदल रही थी। परिणामस्वरूप रहन–सहन, खान–पान, नगरीकरण का स्वरूप भी बदल रहा था। अतः परिवर्तन की इस प्रक्रिया में सांस्कृतिक तत्वों में भी परिवर्तन आया।

सांस्कृतिक दृष्टि से संक्रमणकालीन इस दौर में प्रेमचंद युगीन कहानीकारों का पदार्पण सच्चे संस्कृति प्रहरी के रूप में होता है। इस युग के कहानीकारों ने पाश्चात्यीकरण के बढ़ते दुष्परिणामों के लिए न केवल चिंता जतायी बल्कि भारतीय संस्कृति के उन मूल्यों की भी पहचान की,जो भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित कर सके।

डॉ0 राधाकृष्णन जी का मंतव्य है कि ''यदि हम भारतीय जीवन की सप्राण अविछिन्न धारा देखना चाहते हैं तो उनका दर्शन हमें उसके राजनीतिक इतिहास में नहीं वरन् उसके सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन में ही मिल सकता है।''[1]

अर्थात् संस्कृति किसी व्यक्ति, समुदाय एवं क्षेत्र विशेष के बारे में जानने समझने का एक उपयुक्त माध्यम है, क्योंकि किसी व्यक्ति समूह के खान–पान, वेष–भूषा, आचार–व्यवहार, उनकी कला शैलियाँ आदि संस्कृति के बाह्य–पक्ष होते हैं। प्रायः कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण, पथप्रदर्शक होता है, लेकिन साहित्य के विषय का स्रोत समाज ही होता है एवं समाज में रहने वाले व्यक्तियों के विविध क्रिया–कलापों से ही उनकी संस्कृति का निर्माण होता है। अतः संस्कृति को साहित्यका स्रोत कहा जा सकता है।

सांस्कृतिक बोध से तात्पर्य है– ''संस्कृति विशेष का संपूर्ण ज्ञान।'' किसी देश की सांस्कृतिक परंपरा में धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं राष्ट्रीय विभिन्न नवीन एवं पुरातन धाराएँ प्रवाहित होती रहती हैं। इसमें नवीन धाराओं के उठने–गिरने और मिटने का क्रम चलता रहता है, जिससे विभिन्नताओं का जन्म होता है एवं इन विभिन्नताओं में आपसी संघर्ष भी चलता रहता है, जिससे समकालीन साहित्य प्रभावित होता है। साहित्य के क्षेत्र में सांस्कृतिक बोध को साहित्यकार की संस्कृति के प्रति संवेदना को समझा जाता है।

प्रेमचंद–युगीन कहानीकारों की कहानियाँ भारतीय जीवन के गहरे भावबोध की है, क्योंकि इन कहानीकारों के कहानियों की आधारभूमि वस्तुतः भारतीय समाज एवं भारतीय संस्कृति ही है। इस युग के कहानीकार सामाजिक चेतना के साहित्यकार माने जाते है। इन्हे मूलतः सामाजिक असंगतियों, विरूपताओं का चेता माना जाता है तथा इनकी स्थापना भी इसी रूप में की जाती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – ''अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–व्यवहार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुःख–सुख और सूझ–बूझ को जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उतम परिचायक आपको नहीं मिल सकता।''[2]

डॉ0 सुभाषचन्द्र बोस का कथन है–

''प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में समाज की वास्तविकता को जिस समग्रता के साथ अभिव्यक्त किया है वह भारत के और विशेषकर हिन्दी के रचनाकारों के लिए आदर्श है। समाज के सभी वर्गो के चित्र मुंशी प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में उकेरे है।''

प्रेमचंद का समय लगभग 1907 ई0 से लेकर 1936 ई0 तक विस्तृत है। इनके युग के प्रमुख कहानीकार जयशंकर प्रसाद, विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक', पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ 'अश्क',

'भगवतीचरण वर्मा', भगवती प्रसाद वाजपेयी, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, चंद्रधर शर्मा 'गुलेरी', पं0 बद्रीनाथ भट्ट 'सुदर्शन' आदि है।

प्रेमचंद युगीन पारिवारिक व सामाजिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हुए 'डॉ0 राजेन्द्र कुमार शर्मा' ने लिखा है कि ''समाज की कुरीतियाँ, कुप्रथाएँ, व्याभिचार पापाचार शराबखोरी आदि बुराइयाँ लोगों को निष्प्राण किये थीं। धन के लिए कभी कम आयु की बालिका वृद्ध के साथ विवाह–सूत्र में बाँध दी जाती है, तो कही धनाभाव के कारण बहू–बेटियों को वेश्या बनने के लिए विवश किया जाता था। स्त्रियों के लिए परदे से बाहर आना मुश्किल था। तत्कालीन नारी को भोग की वस्तु माना जाता था। अशिक्षित नारी और भी भयंकर स्थिति में थी। विवाह पद्धति इतनी दूषित थी कि दाम्पत्य जीवन नारकीय हो रहा था।''[3] ऐसे देशकाल एवं वातावरण में प्रेमचंदयुगीन कहानीकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम में समाज–सुधार का अथक प्रयास किया।

प्रेमचंद जी एक युग प्रवर्तक कथाकार हैं। इनकी कहानियों में इनका समय एवं समाज स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनके यहाँ भारत का वास्तकि किसान है तो भारत की वास्तविक नारी भी, जमींदार है तो मजदूर भी, आस्था और विश्वास है तो उसे तोड़ते हुए आधुनिक प्रतिघात भी। अपनी कलम से सब कुछ साकार कर देनेवाले प्रेमचंद अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं पर टिप्पणियाँ करते हैं। अपने वर्तमान के प्रश्नों से प्रेमचंद बराबर टकराते हैं, चुनौतियों का सामना करते हैं, जिसका साक्ष्य इनकी कहानियाँ प्रस्तुत करती है।

डॉ0 महेश भटनागर के अनुसार– ''प्रेमचंद भारत की महान सांस्कृतिक परंपरा के अंग है।''

जयशंकर प्रसाद जी मूलतः सांस्कृतिक चेतना के कहानीकार माने जाते हैं। इनके कहानी–संग्रह 'आँधी' और 'इन्द्रजाल' में यथार्थ जीवन– संघर्ष का चित्रण मिलता है। इनकी 'प्रतिध्वनि' एवं 'संदेह' जैसी कहानियों में आर्थिक लाभ एवं लोभ के लिए रक्त सम्बन्धियों के पारस्परिक व्यवहार की क्रूरता का चित्रण है। 'सलीम' एवं देवरथ जैसी कहानियों में धार्मिक उन्माद एवं विकृति का विरोध है, जो संभवतः अपसंस्कृति की ओर निरन्तर अग्रसर होती हुई भारतीय संस्कृति को बचाने, उचित मार्ग पर लाने, भारतीय सनातन सांस्कृतिक मूल्यों से भारतीय समाज को बोध कराने का ही प्रयास है।

योगेन्द्र प्रसाद सिंह का वक्तव्य है– ''प्रसाद तत्कालीन भारतीय पाठक समाज को भारतीय संस्कृति को चरमशीर्ष में ले जाकर उसे विमर्श के लिए छोड़ देते है कि तुम अपने गौरवमय अतीत से अपने को जोड़कर इस भौतिकवादी संस्कृति से अलग हटकर मानवता, आदर्शप्रियता, मानवीय प्रेम, करूणा, दया, त्याग की संस्कृति से सम्बद्ध अपने भावी विकास के मार्ग का वरण करो। भारतीय संस्कृति का ऐतिहासिक गौरवमय अतीत ही इनकी कहानियों का मुख्य विषय है।''[5]

इसी प्रकार डॉ0 देवेश ठाकुर के अनुसार– ''प्रसाद की कहानियों में नारी–पुरूष से अधिक प्रभावशाली, गतिमान और प्रेरक तत्व से आपूर्ण बनकर प्रतिष्ठित हुई है। 'चित्तौर उद्धार', अशोक तथा 'जहाँआरा' के नारी पात्र अपने तेजस्वी व्यक्तित्व से पुरूष पात्रों को गौण बनाते चलते हैं।''[6]

अतः प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति में निहित नारी के प्रति उस आदर्श, उदात्त एवं प्रतिष्ठित भावना को अपनी कहानियों के माध्यम से स्थापित किया है, जिसमें स्त्री को शक्ति की स्रोत, सर्ववंदनीय, सृष्टि–निर्मात्री, श्रद्धेय, सभेय आदि सभी रूपों में देखा एवं पाया गया है।

विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक' की कहानियों में समाज के पुनरूत्थान, सुधार एवं नवजागरण की भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। इन्होंने मध्यवर्गीय समाज के जीवन की मान्यताओं, समस्याओं, परंपराओं रूढ़ियों, अंधविश्वासों के साथ नैतिक मूल्यबोध का चित्रण अपनी कहानियों में किया है। इनकी कहानियों में बाल–विवाह के उन्मूलन, विधवा–विवाह के समर्थन, छुआछूत के बहिष्कार, हिन्दू–संगठन, हिन्दी–प्रचार आदि पर बल दिया गया है।

पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी कहानियों में सामाजिक जीवन के अभिशप्त, विकृत, घृणित पक्षों के साथ ही स्त्रियों एवं दलित–वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त की है। इनकी कहानियों में राष्ट्रीय भाव–विचारों, स्वाधीनता–आंदोलन, राष्ट्रीय–सम्मान, राष्ट्रीय–ध्वज की रक्षा आदि की भावना व्यक्त हुई है। इन्होंने अपनी कहानियों में दलित–समाज के प्रति सहानुभूति, बाल–विवाह का विरोध, विधवा–पुनर्विवाह का समर्थन, अनमेल–विवाह आदि की निंदा की है, जो 'अभागा किसान', 'निर्लज्जा', 'चॉकलेट', 'दोजख की आग', आदि में द्रष्टव्य है।

'सुदर्शन जी' की कहानियों में परंपरागत नैतिक मूल्यों का प्रतिपादन एवं देश–प्रेम, राष्ट्रीय–भावना, मानवीय–संवेदना आदि की अभिव्यक्ति हुई है। 'सत्यमार्ग', 'हार की जीत', 'तीर्थयात्रा', 'अपनी ओर देखकर', 'कैदी', 'अठन्नी का चोर', 'सेवाधर्म', 'सच का सौदा' आदि कहानियाँ इसी भावबोध की है।

प्रेमचंद–युग में आकर भाषा एवं शिल्प के स्तर पर भी भारी परिवर्तन दिखाई देता है, क्योंकि भाषा भावों की अनुचर होती है। भाव जिस प्रवृत्ति के होते हैं, उसी प्रकार की भाषा–शिल्प में अभिव्यक्ति पाते हैं। प्रेमचंद–युग सांस्कृतिक दृष्टि से संघर्ष का काल था एवं वह संघर्ष भाषा–शैली के स्तर पर भी दिखाई पड़ता है। उस संघर्ष का उद्देश्य था – 'साहित्य को सामान्यजन की अभिव्यिक्ति का साधन बनाना', जिसमें ये कहानीकार सफल भी रहे।

इस युग के कहानीकारों की भाषा सरल, स्वाभाविक, भावानुकूल, आम बोलचाल की भाषा है, जिसमें भोजपुरी, देशज, अरबी–फारसी, तत्सम, तद्भव एवं अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग अत्यंत सजगता से प्रभावशाली रूप में मिलता है। इन कहानीकारों ने मुहावरों लोकोक्तियों एवं सुक्तियों के माध्यम से अपने समय की विसंगतियों को व्यंग्यात्मक रूप में उद्घाटित किया है।

निःसंदेह प्रेमचंद–युगीन कहानीकारों की कहानियाँ उस युग के भारतीय समाज एवं संस्कृति की अव्यवस्था और बदलते जीवन मूल्य को केन्द्र में रखने और मानवीय संवेदनाओं को संरक्षित करने का प्रयास करती है। इस दृष्टि से इनका सांस्कृतिक बोध महत्वपूर्ण हो जाता है।

संदर्भ

1. भारत की अन्तरात्मा – डॉ0 राधाकृष्णन, पृ0 सं0 – 19
2. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, छठा संस्करण छठी आवृत्ति, पृ0 सं0 228 – 230
3. प्रेमचंद परंपरा की कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक चित्रण– डॉ0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, पृ0 सं0 – 40
4. समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद – डॉ0 महेश भटनागर पृ0 सं0 – 56
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास और उसकी समस्याएँ – योगेन्द्र प्रसाद सिंह, वाणी प्रकाशन, पृ0 सं0 – 500
6. हिन्दी कहानी का विकास – गोपाल राय, प्रथम भाग।